भारत के ख़िलाफ़ अमेरिका की टैरिफ़ धमकियाँ

सृजना

31 जुलाई 2025 को, अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रम्प ने भारत से अमेरिका को होने वाले सभी निर्यातों पर 25% का सामूहिक आयात शुल्क (टैरिफ) लगाने की घोषणा की। यह क़दम द्विपक्षीय व्यापार वार्ताओं के पाँच दौर पूरे होने के बावजूद उठाया गया, जबकि छठा दौर अभी अगस्त के अंत में होना निर्धारित था। ट्रम्प की नाराज़गी स्पष्ट थी, क्योंकि भारत अमेरिकी माँगों का विरोध करता रहा – ख़ासकर अपने कृषि क्षेत्र, विशेष रूप से डेयरी उत्पादों, को अमेरिकी निर्यात के लिए खोलने की माँग।

ट्रूथ सोशल (एक अमेरिकी सोशल मीडिया प्लैटफ़ॉर्म) पर अपने बयानों में, ट्रम्प ने भारत की व्यापार बाधाओं को 'घृणित' बताया, देश को 'शुल्क सम्राट' कहा और भारत की अर्थव्यवस्था को 'मृत' भी बताया। उन्होंने पहले से घोषित 25% शुल्क के ऊपर और दंड लगाने की भी धमकी दी, क्योंकि भारत अब भी रूसी कच्चा तेल ख़रीदता है, जिस पर अमेरिका ने प्रतिबंध लगाया हुआ है। यह धमकी 6 अगस्त को सच साबित हो गई, जब ट्रम्प प्रशासन ने भारतीय निर्यातों पर 25% अतिरिक्त शुल्क की घोषणा कर दी। इसके लागू होने पर, अमेरिका जाने वाले भारतीय निर्यातों पर 50% का शुल्क लगेगा।

ट्रम्प का चिड़चिड़ापन और दूसरे देशों को व्यापारिक समझौतों के लिए मजबूर करने में टैरिफ़ का इस्तेमाल अब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मशहूर चाल बन चुका है। जिन देशों ने ट्रम्प की धमकियों के जवाब में जल्दबाज़ी में समझौते किए, वे बेहद नुक़सानदेह शर्तों में फँस गए हैं। यूरोपीय संघ (ईयू) इसकी मिसाल है, जिसने एक एकतरफ़ा डील मंज़ूर की। अब उसे अमेरिका को होने वाले निर्यात पर 15% टैरिफ़ देना पड़ता है और समझौते के अनुसार अमेरिकी अर्थव्यवस्था में 600 अरब डॉलर का निवेश करना होगा तथा तीन साल में 750 अरब डॉलर का अमेरिकी ऊर्जा उत्पाद ख़रीदना पड़ेगा। जबकि, ईयू को होने वाले अमेरिकी निर्यात पर कोई शुल्क नहीं लगेगा। एशिया में भी वियतनाम और इंडोनेशिया जैसे देशों ने अमेरिका के साथ ऐसे व्यापार समझौते किए हैं जो आगे चल कर उनके लिए नुक़सानदेह साबित हो सकते हैं।

ट्रम्प की बेलगाम भाषा और ये भारी टैरिफ़ निस्संदेह भारत सरकार और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के लिए शर्मनाक हैं, जबकि मोदी अपने इस दक्षिणपंथी साथी के साथ निजी रिश्ते का दावा करते हुए अपनी दोस्ती का भरपूर प्रचार करते रहे हैं। इस पृष्ठभूमि में, भारत सरकार का अब तक अमेरिकी दबाव के आगे झुकने से इनकार करना अहम है, और उम्मीद की जानी चाहिए कि आने वाले महीनों में यह रुख क़ायम रहेगा। पर हमें पिछली ट्रम्प सरकार के समय का क़िस्सा भी याद रखना चाहिए। अमेरिकी प्रतिबंध के चलते ईरान से तेल न ख़रीदने की माँग का भारत ने पहले विरोध किया, लेकिन बाद में मोदी सरकार ने घुटने टेक दिए और ईरानी तेल का आयात पूरी तरह बंद कर दिया। इस तरह भारत ने ऐतिहासिक रूप से अपने एक क़रीबी देश से रिश्ते ख़राब कर लिए। यह न सिर्फ़ भारत की ऊर्जा सुरक्षा के लिए हानिकारक है, बल्कि इससे मध्य एशिया, रूस और यूरोप में अपने वैकल्पिक व्यापार मार्ग विकसित करने की भारत की कोशिशें भी कमज़ोर हो गयीं।

প্রচণ্ড-মমতা - Terribly Sympathetic.

प्रचंड ममता (1917), गगनेंद्रनाथ टैगोर

भारत पर लगाए गए दंडात्मक टैरिफ़ के पीछे दो वजहें नज़र आती हैं: पहली, भारत का अपने कृषि बाज़ार को टैरिफ़-मुक्त अमेरिकी आयात के लिए खोलने से इनकार ; और दूसरी, भारत द्वारा अपनी आर्थिक ज़रूरतों और ऊर्जा सुरक्षा का हवाला देते हुए रूसी तेल ख़रीद जारी रखना।

भारत द्वारा अंकल सैम के दबाव का विरोध करने की एक अहम वजह यह है कि कृषि क्षेत्र में टैरिफ़ सुरक्षा को तोड़ना सत्तारूढ़ पार्टी के लिए राजनीतिक आत्महत्या साबित होगा। भारत की 45% से ज़्यादा आबादी अपनी आजीविका के लिए सीधे तौर पर खेती पर निर्भर है। जब 1990-91 में भुगतान संतुलन संकट के समय भारत ने नवउदारवादी ढाँचा अपनाया, तो कृषि क्षेत्र की कल्याणकारी नीतियों को सबसे पहले ख़त्म किया गया। 1990 से 1996 के बीच, कृषि आयात पर औसत टैरिफ़ तेज़ी से 81% से गिरकर 40% हो गया, जिससे लाखों भारतीय किसान बड़े कृषि व्यवसायों और कमोडिटी सट्टेबाज़ों के हिसाब से चलने वाले अंतरराष्ट्रीय कृषि बाज़ार का शिकार हो गए।

इससे एक लंबा कृषि संकट पैदा हुआ, जिसके कारण लाखों किसानों ने आत्महत्या की। कृषि उत्पादों की अस्थिर वैश्विक क़ीमतों ने ग्रामीण आय को तबाह कर दिया। यह गंभीर राजनीतिक अशांति का भी दौर था, क्योंकि पूरे देश में किसान एक बाद एक विरोध प्रदर्शन कर रहे थे। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था ऐसी स्थिति फिर से पैदा नहीं करना चाहेगी, ख़ासकर 2020 के किसान आंदोलन के साथ मोदी का कड़वा अनुभव देखते हुए।

मौजूदा समय में विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार और निवेश दोनों ठप पड़े हैं। और 2014 तक कृषि से शहरी रोज़गार की ओर रुझान बढ़ता दिख रहा था, लेकिन वह अब कुछ उलट गया है। यानी लोग फिर से खेती की तरफ़ लौट रहे हैं। ऐसे में टैरिफ हटाकर कृषि क्षेत्र को चोट पहुँचाना और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचाना, न सिर्फ़ किसानों के लिए, बल्कि भारत की कुल विकास दर के लिए भी हानिकारक होगा।

व्यापार वार्ताएँ जनता की राय या आलोचना के लिए खुली नहीं रही हैं। मगर मीडिया लीक्स से पता चलता है कि अमेरिका भारत पर यह दबाव बना रहा है कि हम अपना डेयरी क्षेत्र खोल दें। भारत की डेयरी अर्थव्यवस्था खेती से जुड़ी है। अमेरिका के बड़े डेयरी फार्मों (जहाँ सैकड़ों मवेशी होते हैं) से उलट, भारतीय किसान आमतौर पर खेती करने के साथ गिनते के जानवर ही पालते हैं।

भारत में पशुपालन किसानी अर्थव्यवस्था का अहम हिस्सा है। खेती में मज़दूरों को आम तौर पर मौसमी ज़रूरत के अनुसार काम मिलता है। लेकिन पशुओं की देखभाल साल के बाकी समय के पारिवारिक श्रम का एक बड़ा हिस्सा है। चावल-गेहूँ के पुआल, गन्ना-मक्का के पत्ते, तिलहन की खली और खरपतवार जैसे फसल अवशेषों को चारे के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है, जिससे बाहर से चारा ख़रीदने की ज़रूरत कम हो जाती है। छोटे किसानों के लिए पशुपालन और दूध की बिक्री खेती क़ायम रखने के लिए ज़रूरी है।

कई दशकों से भारत सरकार ने दूध उत्पादन बढ़ाने और उपलब्धता सुधारने की नीतियाँ चलाई हैं, जिनकी शुरुआत 1970 में ऑपरेशन फ्लड से हुई। नतीजतन, भारत दूध उत्पादन में आत्मनिर्भर बना और डेयरी उत्पादों की खपत लगातार बढ़ी—जिससे कुपोषित आबादी में प्रोटीन की मात्रा ठीक करने में सहायता मिली।

ट्रम्प की डेयरी उत्पादों पर टैरिफ हटाने की माँग मान लेना भारत के डेयरी क्षेत्र पर भारी चोट होगी, जिससे आत्मनिर्भरता की दशकों की मेहनत बेकार हो जाएगी। देश की दीर्घकालिक पोषण सुरक्षा अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों और अमेरिकी मनमर्ज़ी की मोहताज हो जाएगी। इससे भारत 1960 के दशक की असुरक्षा में पहुँच जाएगा, जब अपनी जनता का पेट भरने के लिए भारत को अमेरिका से गेहूँ माँगना पड़ा था।

भू-का, अरुणकुमार एच जी

यह बात स्पष्ट है कि भारत सरकार -भले ही सत्ता में कोई भी पार्टी हो– ऐसी अवस्था से बचे रहना चाहेगी। और शायद इसके चलते भारत सरकार कभी भी कृषि संबंधी अमेरिकी माँगों को स्वीकार न करे। हालाँकि भारत के नेतृत्व और विशेषज्ञ वर्ग से कुछ आवाज़ें आ रहीं हैं कि अमेरिका का भारी टैरिफ लगाने का यह क़दम स्थाई नहीं होगा, और उसके अनुकूल व्यापार समझौता होने के बाद इसे वापस ले लिया जाएगा।

व्यापक औद्योगीकरण और तकनीकी विकास में पूर्वी एशिया से पिछड़ जाने के बाद, भारत के नीति निर्माता पश्चिमी बाज़ारों, और प्रमुख रूप से अमेरिकी बाज़ार तक पहुँच के ज़रिए निर्यात आधारित विकास में चीन की सफलता का रास्ता अपनाकर अपनी स्थिति सुधारने की उम्मीद कर रहे हैं।

राष्ट्रपति ट्रम्प के पहले कार्यकाल से ही, जब अमेरिका-चीन व्यापार संघर्ष वैश्विक आर्थिक तनावों के केंद्र में आ गया था, भारतीय व्यवसायों और सरकार यह उम्मीद कर रहे हैं कि पश्चिमी उपभोक्ताओं को सेवा देने वाली वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में उत्पन्न अवसरों का लाभ भारत को मिलेगा। अमेरिका चीन के उत्पादन से अलगाव (डिकपलिंग) की दिशा में आगे बढ़ रहा है और भारत अमेरिकी कंपनियों की तथाकथित 'चाइना प्लस वन' रणनीति का लाभ उठाना चाहता है। और इस स्थिति में भारत अपने विशाल श्रम बल के बूते निवेश और निर्यात की नई माँगों को अपनी तरफ़ आकर्षित करने की उम्मीद कर रहा है।

भारत को भरोसा है कि उसकी बड़ी श्रम शक्ति उन निवेशकों को आकर्षित करेगी, जो चीन से बाहर उत्पादन करना चाहते हैं। साथ ही, उसका निर्यात आधारित विकास इस उम्मीद पर भी टिका है कि अमेरिका, चीन के मुक़ाबले में भारत को एक रणनीतिक ताक़त के रूप में देखेगा। इसके पीछे का कारण है- भारत-चीन के अनसुलझे सीमा तनाव। यह भी सच है कि अमेरिका चीन को घेरने के लिए विभिन्न भू-राजनीतिक योजनाओं में भारत को शामिल करना चाहेगा –क्वाड में भारत की सदस्यता इसका एक उदाहरण है। पिछले दो दशकों से भारत ने भी अमेरिका के साथ घनिष्ठ रणनीतिक साझेदारी की इच्छा लगातार दिखाई है।
हालाँकि भारत के लिए अमेरिकी कृषि आयातों पर शुल्क हटाने पर सहमत होना मुश्किल है, लेकिन हमारी सरकार शायद अमेरिकी दबाव के आगे झुककर रूसी तेल ख़रीद से क़दम पीछे खींच सकती है, जैसा कि हमने पहले ईरान और वेनेज़ुएला के मामलों में किया था। भारत सरकार अमेरिकी भू-राजनीतिक एजेंडे को एशिया में मज़बूत करने में अपना समर्थन देने की शर्त को भी मान सकती है।

यानी भारत अमेरिका द्वारा एशिया में शुरू किए गए विवादों में खुद को धकेल सकता है। लेकिन हमें पाकिस्तान का हाल याद रखना चाहिए। आधी सदी से अधिक समय तक अमेरिका का क़रीबी रणनीतिक साझेदार होने के बावजूद, वह आर्थिक संकट और निर्भरता के जाल में फँसा हुआ है। दूसरी तरफ़ वे देश भी हैं जिन्होंने अमेरिका के साथ क़रीबी तालमेल बनाकर प्रभावशाली आर्थिक उपलब्धियाँ हासिल की हैं – जैसे जापान, दक्षिण कोरिया और उसके यूरोपीय सहयोगी –हेनरी किसिंजर के उस कथन के बढ़िया उदाहरण बनते जा रहे हैं कि 'अमेरिका का दुश्मन होना ख़तरनाक है, लेकिन उसका दोस्त होना घातक हो सकता है।' रूस को नियंत्रित करने की अपनी कोशिश में अमेरिका द्वारा रचा गया यूक्रेन का विनाश भी भारत के लिए एक गंभीर चेतावनी है।

भले ही भारतीय नीति-निर्माताओं का आशावादी परिदृश्य सच हो जाए और भारत कृषि को नुकसान पहुँचाए बिना या अपनी रणनीतिक स्वायत्तता से समझौता किए बिना कोई द्विपक्षीय व्यापार समझौता कर ले — तब भी भारत उससे कुछ ख़ास लाभ उठाने की स्थिति में नहीं है। अतीत में भारत ने जो मुक्त व्यापार समझौते (एफटीए) बड़े धूमधाम से किए, वे अधिकतर बढ़ते व्यापार घाटे और घरेलू उद्योग के और क्षरण का कारण बने हैं। आसियान (ASEAN) के साथ भारत का एफटीए इसका उदाहरण है, जिसके बाद से भारत का आसियान देशों के साथ व्यापार घाटा तेज़ी से बढ़ा है।

इसी तरह, हाल में संपन्न ब्रिटेन के साथ द्विपक्षीय व्यापार संधि से भी बड़े लाभ की उम्मीद नहीं है ; बल्कि इसके कारण भारत के दवा क्षेत्र को नुक़सान होने की आशंका जताई जा रही है। बताया जाता है कि भारत ने अनिवार्य लाइसेंसिंग और पेटेंट्स पर अपना रुख नरम किया है, जिससे एक ऐसा उदाहरण स्थापित हुआ है जो भविष्य में अन्य विकसित देशों के साथ होने वाली व्यापार वार्ताओं में भारत की स्थिति को और कमज़ोर कर सकता है।